पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों का सशक्तिकरण: एक समाजशास्त्रीय समीक्षा

मोहम्मद आरिफ
शोध छात्र
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
गजरौला, उत्तर प्रदेश

नाहिद परवीन
सहायक प्रोफेसर
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
गजरौला, उत्तर प्रदेश

सारसंक्षेप

पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) को ग्रामीण विकास की सभी समस्याओं का समाधान माना जाता है और यह समाज के वंचित वर्ग, विशेषकर महिलाओं के सशक्तीकरण से जुड़ी है। यह शोधपत्र विकेंद्रीकरण प्रक्रिया और भारत में 73वें संवैधानिक संशोधन के संदर्भ में पीआरआई में महिला प्रतिनिधियों के सशक्तीकरण पर एक समाजशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत करता है, जिसमें पंचायती के कामकाज, स्वयं निर्णय लेने की क्षमता, सामुदायिक गतिविधियों में भागीदारी, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में बदलाव, पंचायती स्तर पर निर्णय लेने की शक्ति और उनकी राजनीतिक भागीदारी के बारे में प्रतिनिधियों के बीच जागरूकता के स्तर को शामिल किया गया है। कमजोर वर्गों के सदस्यों सहित महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी पिछले कुछ वर्षों में काफी हद तक बढ़ी है, जिसका मुख्य कारण सकारात्मक कार्रवाई है। विभिन्न अध्ययनों से संकेत मिलता है कि महिला नेता कम भ्रष्ट हैं, प्रभावी मूल्य पर समान गुणवत्ता वाली अधिक सार्वजनिक वस्तुएँ प्रदान करने में सक्षम हैं और समग्र शासन को बेहतर बनाने के लिए महिलाओं की प्राथमिकताओं पर विचार करती हैं। इसके विपरीत, अध्ययनों से यह भी पता चला है कि महिला प्रतिनिधि अशिक्षित हैं; वे विशेष रूप से ग्राम विकास कार्यक्रमों के संबंध में निर्णय लेने में

पतियों और पुरुष अधिकारियों पर निर्भर रहती हैं। समीक्षा से पता चलता है कि पितृसत्तात्मक और जाति-ग्रस्त समाज में महिलाओं के लिए राजनीतिक यात्रा आसान नहीं है, जिसके कारण महिला सदस्यों को ग्राम पंचायती में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पुरुष प्रतिनिधियों के प्रभुत्व के कारण महिला प्रतिनिधि पंचायती स्तर पर काम करने में सहज नहीं हैं और उन्हें पुरुष प्रतिनिधियों की तुलना में अपनी क्षमता साबित करने में अधिक समय लगता है। इसके अलावा, यह पाया गया कि पुरुष प्रतिनिधि राजनीतिक गतिविधियों में अधिक समय व्यतीत करते हैं, जबकि महिलाएं घरेलू कामों में अधिक समय व्यतीत करती हैं। कुल मिलाकर, 73वें संशोधन के माध्यम से सकारात्मक कार्रवाई ने महिलाओं और हाशिए के समुदायों को सशक्तीकरण की भावना दी है, हालांकि उन्हें अभी भी संतुलन स्तर तक पहुंचना है। जैसा कि कई शोधकर्ताओं ने माना है, अगले एक दशक में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाएं अपनी सामाजिक स्थिति, नेतृत्व की भूमिका, आर्थिक स्थिति, शैक्षिक स्तर और राजनीतिक जागरूकता और प्राप्ति में और प्रगति करने के लिए बाध्य हैं।

मुख्य शब्द: पंचायती राज, सशक्तिकरण, राजनीतिक भागीदारी, आरक्षण, महिलाएं

परिचय

भारत में पंचायती राज व्यवस्था स्थानीय स्वशासन की एक महत्वपूर्ण संरचना है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में विकास, प्रशासन और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभाती है। यह व्यवस्था संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से संवैधानिक दर्जा प्राप्त कर चुकी है। इस संशोधन का मुख्य उद्देश्य स्थानीय स्वशासन को मजबूत करना और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को ग्रामीण स्तर तक पहुँचाना था। लोकतंत्र सशक्तिकरण को सुनिश्चित करता है, और पंचायती राज संस्थाएँ (पीआरआई) इस प्रक्रिया में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी को गारंटी देती हैं। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में महिलाओं की सार्थक भागीदारी के लिए लैंगिक

समानता एक आवश्यक शर्त है। इस दिशा में केंद्र और राज्य सरकारों ने शिक्षा, रोजगार में समान अवसर प्रदान करने और महिलाओं की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए विभिन्न योजनाएँ और कार्यक्रम लागू किए हैं। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, पिछले दो दशकों में भारत में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान ही इस बात पर जोर दिया था कि महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बिना देश का वास्तविक विकास संभव नहीं है। उन्होंने कहा था, "जब तक भारत की महिलाएँ सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह से भाग नहीं लेतीं, तब तक देश का उद्धार नहीं हो सकता। विकेंद्रीकरण का सपना तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक महिलाएँ इसमें अपना पूरा योगदान नहीं देतीं। मुझे उस स्वराज की कोई आवश्यकता नहीं है, जिसमें महिलाओं ने अपनी पूरी क्षमता से भाग नहीं लिया है" (उषा, 1999)।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी ने न केवल लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया है, बल्कि स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया को भी अधिक समावेशी और प्रतिनिधि बनाया है। हालांकि, इस प्रक्रिया में अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं, जैसे सामाजिक पूर्वाग्रह, शिक्षा की कमी, और पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं का प्रभाव। इन बाधाओं को दूर करने के लिए निरंतर प्रयास और नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है। इस प्रकार, पंचायती राज संस्थाएँ महिला सशक्तिकरण के लिए एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करती हैं, जो लोकतंत्र को मजबूत करने और समाज के सभी वर्गों को विकास की मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास करती हैं।

73वां संविधान संशोधन मुख्य रूप से दो कारणों से मील का पत्थर है: a. इसने स्थानीय सशक्तिकरण को सुगम बनाया और b. इसने महिला सशक्तिकरण को सुनिश्चित किया। यह

महिलाओं के लिए पंचायती सीटों में 33 प्रतिशत (कुल संख्या का एक तिहाई) आरक्षण प्रदान करता है। यह अधिनियम अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के लिए उनकी आबादी के अनुपात में आरक्षित सीटें भी प्रदान करता है। पंचायतों के अध्यक्षों के पदों का समान अनुपात (एक तिहाई) महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है। वर्तमान में पीआरआई स्तर पर महिलाओं के लिए आरक्षण कोटा 50% निर्धारित है।

भारत ने 2001 को महिला सशक्तीकरण का वर्ष घोषित करके नई सहस्राब्दी को चिह्नित किया है। लैंगिक समानता और महिलाओं के सशक्तीकरण को सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों के तहत महत्वपूर्ण लक्ष्यों (लक्ष्य-3) में से एक माना जाता है। इसके अलावा, भारत सरकार ने ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के राजनीतिक नेतृत्व को बढ़ावा देने के लिए बाहरी एजेंसी (यूएनडीपी) से वित्तीय सहायता के साथ वर्ष 2011 में संयुक्त राष्ट्र महिला कार्यक्रम परियोजना लागू की है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य स्थानीय पीआरआई में महिलाओं की समान राजनीतिक भागीदारी को मजबूत करना और बढ़ाना है। ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2012 के अनुसार, आर्थिक भागीदारी, शैक्षिक प्राप्ति, राजनीतिक सशक्तीकरण, स्वास्थ्य और अस्तित्व के समग्र सूचकांक के आधार पर 135 देशों में से भारत का रैंक 105 है। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए हाल ही में प्रस्तावित एक तिहाई सीटें या आधी सीटें अपने आप में उनके सशक्तिकरण के लिए पर्याप्त नहीं हैं। अधिकांश मामलों में, महिलाएं गृहणियां और प्रतिनिधि हैं जिन्होंने पहली बार राजनीति में प्रवेश किया है। संकीर्ण मानसिकता वाली संस्कृति, पितृसत्तात्मक समाज और शिक्षा का निम्न स्तर ग्रामीण स्थानीय निकायों में उनकी कम राजनीतिक भागीदारी के लिए जिम्मेदार बताए गए हैं (रशिमी 1997)। इस शोधपत्र में, महिला प्रतिनिधियों के सशक्तिकरण पर एक समाजशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिसमें पंचायतों के कामकाज, स्वयं निर्णय लेने की क्षमता, सामुदायिक गतिविधियों में भागीदारी, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति, पंचायती स्तर पर निर्णय लेने की शक्ति और 73वें संवैधानिक संशोधन के बाद राजनीतिक भागीदारी के बारे में उनकी जागरूकता के स्तर पर प्रकाश डाला गया है।

महिला सशक्तिकरण के संबंध में राष्ट्रीय और वैश्विक विचार

महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही संस्थाएँ समाज में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को बेहतर बनाने के प्रयासों में सक्रिय रूप से शामिल रही हैं। समानता और सक्रिय भागीदारी के बीच अपरिहार्य संबंध को पहचानते हुए, कई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, सरकारी निकायों और गैर-सरकारी संगठनों ने सक्रिय कदम उठाए हैं। संयुक्त राष्ट्र ने इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने 1946 में महिलाओं की स्थिति पर आयोग की स्थापना की। यह आयोग मूल रूप से पुरुषों और महिलाओं के लिए समान अधिकारों की वकालत करने की ओर उन्मुख था। यूएन ने 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के साथ लैंगिक समानता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को मजबूत किया, जिसने पुरुषों और महिलाओं दोनों के समान अधिकारों का दृढ़ता से बचाव किया (त्रिवेदी, 2010)।

महिला सशक्तिकरण के मुद्दे को 1952 में 'महिलाओं के राजनीतिक अधिकार' सम्मेलन और 1966 में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के माध्यम से प्रमुखता मिली। इन पहलों का उद्देश्य महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में समान अवसर प्रदान करना था। 1975 में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर तब आया जब मैक्सिको सिटी में पहला विश्व सम्मेलन हुआ, जिसके कारण संयुक्त राष्ट्र ने 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और 1980 को 'महिलाओं के विकास' के लिए समर्पित वर्ष के रूप में नामित किया। इसके अलावा, 1979 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन को लागू किया। इस कन्वेंशन ने जीवन के सभी पहलुओं में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव का मुकाबला करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया।

भारत में पंचायती राज प्रणाली का विकास और विस्तार

भारत में पंचायती राज प्रणाली का विकास एक लंबे ऐतिहासिक क्रम का हिस्सा है, जिसकी जड़ें देश की प्राचीन संस्कृति और परंपराओं में गहराई तक समाई हुई हैं।

भारतीय सभ्यता का प्राचीन ग्रंथ *ऋग्वेद* भारतीय उपमहाद्वीप में फैले स्वशासी ग्राम समुदायों की उपस्थिति के साक्ष्य प्रस्तुत करता है। ये समुदाय स्थानीय प्रशासन, सामाजिक प्रबंधन और विवाद समाधान के स्वायत्त केंद्र के रूप में कार्य करते थे। *ऋग्वेद* में इन समुदायों को "सभा" कहा गया है, जो ग्रामीण जीवन और शासन प्रणाली का एक अभिन्न अंग थीं। इन सभाओं का मुख्य कार्य ग्राम स्तर पर प्रशासनिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करना था। ये समुदाय मुख्यतः कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं और उच्च प्रशासनिक अधिकारियों के बीच सेतु का कार्य करते थे। धीरे-धीरे, ये सभा-प्रणाली "पंचायतों" के रूप में विकसित हुई, जहाँ पांच प्रतिष्ठित और अनुभवी बुजुर्ग ग्राम के हितों की देखरेख और नेतृत्व करते थे। इन पंचायतों ने न केवल प्रशासनिक कार्यों का संचालन किया, बल्कि ग्रामीण समाज में न्याय की स्थापना और सामाजिक संतुलन बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। उत्तर और दक्षिण भारत में पंचायतें प्रशासनिक ढांचे का केंद्रीय हिस्सा बन गईं। इन पंचायतों ने सामाजिक सौहार्द को बढ़ावा देने, छोटे और बड़े विवादों को सुलझाने, और न्याय प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ग्राम स्तर पर पंचायतें शासन का प्रमुख अंग बन गईं, जिनके माध्यम से स्थानीय समस्याओं का समाधान किया जाता था। इन पंचायतों ने स्वायत्तता और सामुदायिक भावना का पोषण किया।

मध्यकालीन काल में, विशेषकर मुगल शासन के दौरान, पंचायतों का स्वरूप और उनकी कार्यप्रणाली लगभग अपरिवर्तित रही। इस काल में भी पंचायतें सामाजिक और आर्थिक प्रबंधन का एक प्रभावी साधन बनी रहीं। गाँवों में पंचायतें अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर विवादों का निपटारा करती थीं, कर संग्रह में सहायता करती थीं, और विभिन्न सामाजिक अनुष्ठानों का संचालन सुनिश्चित करती थीं।

ब्रिटिश भारत में पंचायतों का विकास

ब्रिटिश भारत में पंचायतों का विकास स्थानीय स्वशासन और प्रशासनिक सुधारों की ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा था, जिसे औपनिवेशिक शासन के दौरान विभिन्न चरणों में संचालित किया गया। 1870 में, लॉर्ड मेयो ने सत्ता के विकेंद्रीकरण का प्रस्ताव रखा, जिसका उद्देश्य प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने के साथ-साथ साम्राज्यवादी वित्तीय तंत्र को मजबूत करना था। इसी वर्ष, बंगाल चौकीदारी अधिनियम के माध्यम से ग्राम पंचायती प्रणाली को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया, जिसने जिला मजिस्ट्रेटों को ग्रामीण क्षेत्रों में नियुक्त सदस्यों से बनी पंचायतों की स्थापना का अधिकार प्रदान किया। इसके बाद 1882 में, लॉर्ड रिपन के नेतृत्व में "स्वशासन" की अवधारणा को बढ़ावा देने के लिए ग्रामीण स्थानीय बोर्डों की शुरुआत की गई। इन बोर्डों में दो-तिहाई निर्वाचित गैर-सरकारी प्रतिनिधि और एक गैर-सरकारी अध्यक्ष शामिल थे, हालांकि इनके कार्यान्वयन में धीमी प्रगति हुई। 1907 में विकेंद्रीकरण पर रॉयल आयोग की स्थापना की गई, जिसमें श्री रमेश चंद्र दत्त एकमात्र भारतीय सदस्य थे। आयोग की 1909 की रिपोर्ट ने पंचायतों की प्रशासनिक भूमिका को मान्यता दी और रिपन के संकल्प में वर्णित सिद्धांतों को आगे बढ़ाया। 1919 के मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों ने स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय मंत्रियों के अधिकार क्षेत्र में रखा और पंचायतों के व्यापक लोकतंत्रीकरण का प्रस्ताव किया। 1935 का भारत सरकार अधिनियम इस विकास यात्रा में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ, जिसने प्रांतीय स्वायत्तता की शुरुआत की और स्थानीय स्वशासन संस्थाओं, विशेषकर ग्राम पंचायतों, को लोकतांत्रिक बनाने के लिए प्रांतीय प्रशासनों को कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया। इन सुधारों ने भारतीय पंचायती प्रणाली को सुदृढ़ करने और भविष्य में स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन के आधार तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्वतंत्रता के बाद भारत में पंचायती राज का विकास

भारत की स्वतंत्रता के बाद, पंचायती राज की स्थापना देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण कदम थी। स्वतंत्र भारत के संविधान ने स्थानीय स्वशासन को सशक्त करने और इसे ग्रामीण विकास के माध्यम के रूप में विकसित करने के लिए आवश्यक प्रावधानों को शामिल किया।

संवैधानिक प्रावधान और प्रारंभिक दिशा

भारतीय संविधान के *अनुच्छेद* 40 में, जो राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का हिस्सा है, ग्राम पंचायतों के संगठन और उन्हें स्वशासन के लिए सशक्त बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। हालांकि, यह निर्देशक सिद्धांत अनिवार्य नहीं था, और पंचायतों की स्थापना का निर्णय राज्यों के विवेक पर छोड़ दिया गया। संविधान की *सातवीं अनुसूची* के अनुसार, स्थानीय निकायों के लिए कानून बनाने का अधिकार राज्यों को दिया गया। सूची II के मद 5 के अंतर्गत, राज्य सरकारें पंचायती राज संस्थाओं के गठन और प्रशासन के लिए आवश्यक कानूनी ढांचे का निर्माण कर सकती थीं।

बलवंतराय मेहता समिति (1957)

पंचायती राज व्यवस्था को संस्थागत रूप देने में 1957 में गठित बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशें अत्यंत महत्वपूर्ण रहीं। इस समिति को सामुदायिक विकास परियोजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा की समीक्षा करने का कार्य सौंपा गया था। समिति ने अपनी रिपोर्ट में स्थानीय स्वशासन के लिए त्रि-स्तरीय पंचायती राज प्रणाली (ग्राम पंचायती, पंचायती समिति और जिला परिषद) का सुझाव दिया। इसने स्थानीय समुदायों को सशक्त करने और सामुदायिक विकास में सार्वजनिक

भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए वैधानिक प्रतिनिधि निकायों की आवश्यकता को रेखांकित किया। समिति की सिफारिशों को *राष्ट्रीय विकास परिषद* द्वारा स्वीकार किया गया, और राज्यों को इन सिद्धांतों पर आधारित संरचनाओं को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

राजस्थान के नागौर में पंचायती राज की शुरुआत (1959)

भारत में पंचायती राज की औपचारिक शुरुआत 2 अक्टूबर, 1959 को हुई, जब प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले में इस प्रणाली का उद्घाटन किया। यह क्षण शासन में एक ऐतिहासिक बदलाव का प्रतीक था, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों के विकास और प्रशासन में जनता की भागीदारी का आधार तैयार हुआ। इसके बाद अन्य राज्यों ने भी पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया।

अशोक मेहता समिति (1978)

1978 में गठित अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज प्रणाली की खामियों की समीक्षा की और इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान करने की सिफारिश की। समिति ने सुझाव दिया कि पंचायती राज को केवल स्थानीय स्वशासन का माध्यम न मानकर ग्रामीण विकास का अभिन्न अंग बनाया जाए। पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों ने इन सिफारिशों के आधार पर स्थानीय निकायों को सशक्त बनाने के लिए सुधार किए।

संवैधानिक संशोधन प्रस्ताव (1989)

1989 में पंचायती राज और नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिए संविधान संशोधन प्रस्ताव लाया गया। हालांकि, ये प्रस्ताव राज्यसभा में पास नहीं हो सके। इसके बावजूद, पंचायती राज को मजबूत करने के लिए प्रयास जारी रहे।

1991 और 1992 के संशोधित विधेयक

1991 में, संशोधित संविधान संशोधन विधेयक पेश किए गए, जिनमें पहले के प्रस्तावों में बदलाव शामिल थे। इन विधेयकों ने पंचायतों और नगरपालिकाओं को अधिक सशक्त बनाने और उनकी स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए विस्तृत प्रावधान किए। दिसंबर 1992 में, इन विधेयकों को लोकसभा और राज्यसभा दोनों में मंजूरी मिली।

संविधान (73वां और 74वां संशोधन) अधिनियम (1992)

संविधान में *73वां और 74वां संशोधन* क्रमशः पंचायती राज संस्थाओं और नगरपालिकाओं के लिए लाए गए। इन संशोधनों को देश के आधे से अधिक राज्यों की विधानसभाओं द्वारा मंजूरी मिलने के बाद 24 अप्रैल, 1993 को लागू किया गया। इसके साथ ही *भाग* IX (पंचायती) और *भाग* IXA (नगरपालिका) संविधान में जोड़े गए।

73वें संशोधन ने पंचायती राज को एक त्रि-स्तरीय ढांचा दिया:

1. **ग्राम पंचायती** (गांव स्तर),
2. **पंचायती समिति** (ब्लॉक स्तर), और
3. **जिला परिषद** (जिला स्तर)।

संशोधन में पंचायतों के कार्यकाल को पाँच वर्ष तक सीमित किया गया और नियमित चुनाव सुनिश्चित किए गए। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। *राज्य वित्त आयोगों* और *राज्य निर्वाचन आयोगों* के गठन के माध्यम से वित्तीय और चुनावी स्वायत्तता को मजबूत किया गया।

आरक्षण नीतियों के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना

पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) के सभी स्तरों पर सदस्यों और अध्यक्षों के लिए कुल पदों में से कम से कम एक तिहाई पदों का महिलाओं के लिए अनिवार्य आरक्षण लागू किया गया। इस नीति के पीछे तर्क सभ्य समाज को आकार देने में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करने में निहित है। पीआरआई के विभिन्न स्तरों पर उनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करके, आरक्षण नीति ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास करती है, जो ग्रामीण भारत के समग्र विकास के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है। इस प्रतिबद्धता को 2001 में रेखांकित किया गया था, जिसे आधिकारिक तौर पर "महिला सशक्तिकरण का वर्ष" नामित किया गया था, जो सार्वजनिक जीवन के सभी पहलुओं में महिलाओं की स्थिति और भागीदारी को आगे बढ़ाने के लिए देश की प्रतिबद्धता पर जोर देता है (बाग और जगदला, 2016)।

भागीदारी विभिन्न रूपों में प्रकट हो सकती है: प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, औपचारिक या अनौपचारिक, सामाजिक, राजनीतिक या संगठनात्मक। पीआरआई में महिलाओं की भागीदारी विविध भूमिकाएँ निभाती है, जिसमें ऐसी गतिविधियाँ शामिल हैं जो निर्णय लेने की प्रक्रियाओं और प्रशासन में उनकी भागीदारी को आकार देती हैं। यह भागीदारी रणनीति और कार्यक्रम नियोजन, नीतियों के निर्माण और व्याख्या और लक्षित समूहों के विकास तक फैली हुई है। समकालीन अवधि में, लोगों की भागीदारी की पारंपरिक धारणा अक्सर कम पड़ जाती है क्योंकि नागरिकों के पास उनके कल्याण के लिए डिज़ाइन किए गए सरकारी कार्यक्रमों में शामिल होने के लिए समय, संसाधन या प्रेरणा की कमी होती है। नतीजतन, व्यापक भागीदारी को

बढ़ावा देने वाले संस्थागत ढांचे को स्थापित करने के लिए सरकारी सहायता आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास पहलों के सरकारी प्रशासन में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए पंचायती राज और सामुदायिक विकास कार्यक्रम जैसी पहलों को स्पष्ट रूप से पेश किया गया था।

महिला सशक्तिकरण और राजनीतिक भागीदारी

राजनीतिक जीवन में महिलाओं के साथ समान व्यवहार, सार्थक और प्रभावी होने के लिए जमीनी स्तर से शुरू होना चाहिए। पितृसत्तात्मक और जाति-ग्रस्त समाज में महिला ग्राम पंचायती सदस्यों के लिए राजनीतिक यात्रा आसान नहीं है। भास्कर (1997), बेस्ले, पांडे और राव (2007) ने पाया कि राजनीतिक सदस्यता और उनके परिवारों का राजनीतिक इतिहास महिलाओं के राजनीति में प्रवेश करने में सहायक होता है। पलानीथुराई (1994) ने बताया कि तमिलनाडु की ग्राम पंचायतों में महिला सदस्यों को बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पुरुष सदस्य कभी-कभी निर्वाचित महिला वार्ड सदस्यों के साथ सहयोग नहीं करते हैं और महिलाओं के लिए अपने घर के काम और निर्वाचित अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों के बीच संतुलन बनाना आम तौर पर एक मुश्किल काम होता है। रश्मी (1997) ने बताया कि ज्यादातर मामलों में महिलाएँ गृहिणियाँ और प्रतिनिधि हैं जो पहली बार राजनीति में आई हैं और उनमें से ज्यादातर अशिक्षित हैं या प्राथमिक स्तर तक शिक्षित हैं। बर्न्स आदि (2001) ने पाया कि जहां पुरुष प्रतिनिधि राजनीतिक भागीदारी पर अधिक समय व्यतीत करते हैं, वहीं महिलाएं दिन भर में घरेलू कामों पर अधिक समय व्यतीत करती हैं और महिला प्रतिनिधियों के पास राजनीतिक भागीदारी के लिए बहुत कम समय होता है।

मिश्रा (1999) ने महिला प्रतिनिधियों के लिए 'राजनीतिक प्रॉक्सी' शब्द का इस्तेमाल किया है, जिनके पास केवल औपचारिक शक्ति होती है जबकि वास्तविक शक्ति अभी भी उनके परिवार के पुरुष सदस्यों के पास होती है। हस्ट (2002) द्वारा किए गए एक अन्य अध्ययन ने उड़ीसा के खुर्दा

और नयागढ़ जिलों में स्थानीय सरकारी संस्थानों में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण की जांच की और पाया कि अधिकांश महिला उम्मीदवारों ने आरक्षण कोटे के माध्यम से पंचायती चुनाव लड़ा था और बहुत कम (12.8%) महिलाओं ने आत्मविश्वास या अपने व्यक्तिगत गुणों के आधार पर चुनाव लड़ा था। पांडा (1996) ने उड़ीसा में ग्राम पंचायतों के अपने अध्ययन में पाया कि महिला प्रतिनिधि केवल आरक्षण के अनिवार्य प्रावधान या अपने परिवार के सदस्यों या अपने ग्राम समुदाय के दबाव के कारण राजनीति में प्रवेश करती हैं। चट्टोपाध्याय और डुफ्लो (2004) ने पाया कि आरक्षित सीटों पर चुनी गई महिलाएं अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में गरीब हैं; वे कम अनुभवी, कम शिक्षित और साक्षर होने की कम संभावना वाली हैं। कर्नाटक के चित्रदुर्ग जिले में अपने अध्ययन के आधार पर, नागराज और पल्लवी (2013) ने पाया कि पीआरआई में आरक्षण ने महिला सदस्यों की संख्या में वृद्धि की है और आदिवासी महिलाओं के विकास में मदद की है जो अपने मतदान की शक्ति, पंचायती सदस्यों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के बारे में जागरूक हो गई हैं और उन्हें उनके परिवार के सदस्यों का समर्थन मिल रहा है। पाटिल (2009) ने महाराष्ट्र के कोल्हापुर जिले में ग्रामीण स्थानीय सरकार में एससी/एसटी/अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) और महिला प्रतिनिधियों की शक्ति संरचना और भागीदारी का अध्ययन किया। उनके अध्ययन में पाया गया कि हालांकि गृहिणियां आरक्षण के कारण राजनीति में आई थीं, लेकिन प्रशासन में उनकी भूमिका नाममात्र की थी और वे ऐसी गतिविधियों के लिए अपने पतियों पर निर्भर पाई गईं। शिक्षा की कमी, पंचायती प्रशासन के बारे में जानकारी, सदस्यों और अध्यक्ष की खराब आर्थिक स्थिति ने प्रमुख जाति के लोगों को ग्राम पंचायती प्रशासन को नियंत्रित करने में सक्षम बनाया क्योंकि बाद वाले कृषि कार्य के लिए प्रमुख जातियों पर काफी हद तक निर्भर थे। उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में पंचायती सदस्यों, अधिकारियों और ग्रामीणों को शामिल करते हुए सिंह (2009) द्वारा बहिष्कार और समावेशन की गतिशीलता पर किए गए अध्ययन से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश में महिलाएं हमेशा हाशिये

पर रही हैं, जिसका कारण अशिक्षा, प्रॉक्सी उम्मीदवारी, परिवार और समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति, कम उम्र में शादी, गरीबी, घरेलू काम का बोझ आदि हैं।

निष्कर्ष

पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों का सशक्तिकरण एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन की दिशा में उठाया गया बड़ा कदम है। 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से महिलाओं, विशेषकर अनुसूचित जाति (एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी) और अन्य कमजोर वर्गों की महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यह सकारात्मक कार्रवाई और आरक्षण नीतियों का प्रत्यक्ष परिणाम है। हालांकि, भारतीय संविधान द्वारा गारंटीकृत समान अधिकारों के बावजूद, महिलाओं को अभी भी राजनीतिक और सामाजिक भागीदारी में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पितृसत्तात्मक और जातिगत समाज में उनकी राजनीतिक यात्रा आसान नहीं है, जिसके कारण उन्हें ग्राम पंचायतों में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी न केवल उनकी स्वायत्तता को बढ़ाती है, बल्कि समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास को भी गति प्रदान करती है। हालांकि, इन संस्थाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अक्सर प्रतीकात्मक बना रहता है। उनकी भागीदारी अक्सर प्रॉक्सी के रूप में होती है, जहां उनके पति या अन्य प्रभावशाली व्यक्ति उनके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। इससे उनकी वास्तविक सशक्तिकरण की प्रक्रिया अधूरी रह जाती है। महिलाओं को पंचायती राज संस्थाओं में सक्रिय रूप से शामिल करने के लिए, केवल संख्यात्मक प्रतिनिधित्व ही पर्याप्त नहीं है। उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में वास्तविक भागीदारी और प्रभावशाली भूमिका निभाने के लिए सक्षम बनाना आवश्यक है। महिला प्रतिनिधियों ने ग्रामीण

क्षेत्रों में बुनियादी सेवाओं के प्रावधान और महिलाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी भागीदारी ने समावेशिता को बढ़ावा दिया है और उन्हें राजनीतिक रूप से सशक्त बनाया है। साथ ही, इससे उनके आत्मविश्वास, सामाजिक स्थिति और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। हालांकि, उनकी शिक्षा, सामाजिक पृष्ठभूमि और गरीबी जैसे कारक उनके सशक्तिकरण और भागीदारी को प्रभावित करते हैं। प्रमुख जातियों के प्रति वफादारी और सामाजिक प्रभाव भी उनकी राजनीतिक भागीदारी को सीमित करते हैं। दलित और आदिवासी महिलाओं के लिए ग्राम पंचायतों में सक्रिय भूमिका निभाना विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण है। उन्हें अक्सर श्रम और वित्तीय जरूरतों के लिए प्रमुख जातियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जो उन्हें पंचायती गतिविधियों में विनम्र और गैर-आक्रामक बनाता है। इस स्थिति को बदलने के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन, भूमि अधिकारों का वितरण, क्षमता निर्माण और महिला सदस्यों के बीच संगठन और नेटवर्किंग को मजबूत करने की आवश्यकता है। समाज के सभी वर्गों, जैसे परिवार, धार्मिक नेताओं और राजनीतिक हस्तियों का सहयोग अपरिहार्य है। पितृसत्तात्मक और पुरुष प्रधान सामाजिक मानदंडों को चुनौती देते हुए, एक समतावादी समाज की ओर बढ़ना होगा, जहां महिलाएं और पुरुष समान रूप से सहयोग करें।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के सशक्तिकरण के माध्यम से ही उनकी मांगों और आवश्यकताओं को राष्ट्रीय एजेंडे पर प्रभावी ढंग से उठाया जा सकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि महिलाएं न केवल संस्थाओं में उपस्थित हों, बल्कि उनकी आवाज़ सुनी जाए और उनके निर्णयों को महत्व दिया जाए, सहयोगात्मक और परिवर्तनकारी प्रयासों की आवश्यकता है। कुल मिलाकर, 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं का सशक्तिकरण एक सकारात्मक कदम है, लेकिन अभी भी इस दिशा में एक लंबा रास्ता तय करना है। महिलाओं की

शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक स्थिति में सुधार के साथ–साथ उनकी निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत करने की आवश्यकता है। साथ ही, पितृसत्तात्मक और जातिगत मानदंडों को चुनौती देकर एक समतावादी सामाजिक–आर्थिक ढांचा स्थापित करना होगा। केवल इसी तरह के समग्र और समावेशी दृष्टिकोण के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों का सशक्तिकरण सही मायने में सफल हो सकता है और 73वें संशोधन के उद्देश्यों को पूरी तरह से प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ

भास्कर, मनु (1997), 'केरल में महिला पंचायती सदस्यों का एक प्रोफ़ाइल', आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 32 (26): WS13-20, 26 अप्रैल–2 मई, 1997।

चट्टोपाध्याय, राघबेंद्र और एस्टर डुफ्लो (2004), 'नीति निर्माताओं के रूप में महिलाएं: भारत में एक यादृच्छिक नीति प्रयोग से साक्ष्य।' इकोनॉमेट्रिका 72(5), 1409–1443.

एवलिन हस्ट (2002), 'राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण: भारतीय संविधान में 73वें संशोधन के बाद उड़ीसा में स्थानीय सरकार के संस्थानों में महिलाएं', वर्किंग पेपर नंबर 6, साउथ एशिया इंस्टीट्यूट राजनीति विज्ञान विभाग, हीडलबर्ग विश्वविद्यालय।

पंचायती राज मंत्रालय भारत सरकार (2008), "पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (ईडब्ल्यूआर)" पर अध्ययन, नई दिल्ली।

मिश्रा, और दत्ता, अनिल (1999), 'राजनीतिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से सशक्तिकरण', मिश्रा, अनिल दत्ता, (संपादक), लिंग परिप्रेक्ष्य: भागीदारी, सशक्तिकरण और विकास, राधा प्रकाशन नई दिल्ली।

रश्मि, अरुण (1997), "पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका: एक स्थिति रिपोर्ट", सामाजिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली।

त्रिवेदी, बी.आर. (2010), संवैधानिक समानता और महिला अधिकार. साइबर टेक प्रकाशन.

बाग, एम., और जगदला, एम. (2016), महिला सशक्तिकरण: पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण के माध्यम से मुद्दे और चुनौतियाँ। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन मैनेजमेंट, सोशल साइंसेज एंड टेक्नोलॉजी, 13(13)।

उषा, नारायणन (1999), "महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण: अनिवार्यताएं और चुनौतियां", मेनस्ट्रीम, 10 अप्रैल, पृष्ठ-7.

बेस्ले, टी., आर. पांडे, और वी. राव (2007), क्रिया में भागीदारी लोकतंत्र: दक्षिण भारत से सर्वेक्षण साक्ष्य। जर्नल ऑफ द यूरोपियन इकोनॉमिक्स एसोसिएशन 3 (2–3): 648–657।

बर्न्स, नैन्सी, के लेहमैन स्कोल्ज़मैन, और सिडनी वर्बा. (2001), सार्वजनिक कार्रवाई की निजी जड़ें: लिंग, समानता और राजनीतिक भागीदारी। कैम्ब्रिज, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

नागराजा, एस., और कुसुगल, पी.एस. (2013), सहभागी लोकतंत्र और आदिवासी महिलाएँ: एक केस स्टडी। पैरीपेक्स-इंडियन जर्नल ऑफ़ रिसर्च-एक सहकर्मी द्वारा समीक्षित और रेफरीड इंटरनेशनल।